P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

परम सत्ता की समीक्षा– व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में

नन्दलाल चौरसिया
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राजकीय महिला पी0जी0 कालेज,
अम्बारी, आजमगढ़
(उ0प्र0) भारत

सारांश

महर्षि पाणिनि के अनुसार 'दर्शन' शब्द 'दृशिर प्रेक्षणे' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। दर्शन शब्द प्रमेय मीमांसा तथा प्रमाण मीमांसा दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। दर्शन से उन प्रमाणों या साधनों का बोध होता है जिनसे परमतत्व का ज्ञान होता है।

वैदिक ऋषियों को इस बात का विश्वास था कि एक ऐसी यथार्थ सत्ता अवश्य है जिसकी अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि भिन्न–भिन्न संज्ञाएँ हैं। यथार्थ सत्ता एक ही है विद्वान लोग उसे नाना प्रकार के नामों से पुकारते हैं। यही एक मात्र सत्ता विश्व की आत्मा है।

मानव मन में जड– चेतन के सृष्टा के सम्बन्ध में उद्भूत विविध प्रश्नों पर विद्वान् मनीषियों ने अनेक मत व्यक्त किये हैं। इनके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में अनेक दर्शनों का आविर्भाव हुआ। वेद प्रामाण्य या ईश्वर की सत्ता में विश्वास के आधार पर भारत में आस्तिक और नास्तिक दो प्रकार के दर्शनों का आविर्भाव हुआ।

नास्तिक या निरीश्वर वादी दर्शनों में प्रथम नाम है– चार्वाक, जो कि एक भौतिकवादी दर्शन है। बौद्ध और जैन दर्शन भी ईश्वर की सत्ता नहीं मानते हैं। कपिल का 'सांख्य दर्शन', पतंजलि का 'योग दर्शन', गौतम का 'न्याय दर्शन', कणाद का 'वैशेषिक दर्शन', मीमांसा दर्शन, तथा वेदान्त दर्शन आस्तिक दर्शन हैं।

इस प्रकार एक ही सत्ता के लिये मनीषियों ने विविध मत व्यक्त किये हैं, उसी को व्याकरण दर्शन में शब्द–ब्रह्म के नाम से अभिहित किया गया है।

मुख्य शब्द : दर्शन, प्रमेय मीमांसा, प्रमाण मीमांसा, परम सत्ता, आस्तिक, नास्तिक, शब्दब्रह्म।

प्रस्तावना

व्याकरण दर्शन में परम सत्ता

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'दर्शन' शब्द 'दृशिर प्रेक्षणे' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। आचार्य पाणिनि ने 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग भाव, करण एवं अधिकरण तीनों अर्थों में किया है।[1]

एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात जिसके द्वारा देखा या जाना जाय, वह दर्शन है। इस प्रकार दर्शन शब्द से उन साधनों या प्रमाणों का बोध होता है जिनसे परम तत्व का ज्ञान होता है। इन दोनों व्युत्पत्तियों से ज्ञात होता है कि दर्शन शब्द प्रमेय मीमांसा और प्रमाण मीमांसा दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

भारतीय परम्परा में प्रमेय और प्रमाण मीमांसा का विकास मानव कल्याण के लिये हुआ है। दर्शन का मानव जीवन के साथ बडा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को देखकर आदि मानव अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ होगा। सूरज, चाँद, तारे, पर्वत, नदी, वृक्ष आदि के विषय में उसके मन में विविध प्रश्न उठे होंगे। सांसारिक आवागमन चक्र को देखकर उसे संसार के रचयिता तथा उस रचनाकार से इस जड–चेतन सृष्टि के सम्बन्ध को जानने की जिज्ञासा हुई होगी। इस प्रकार की अनेकानेक उत्सुकताओं के कारण प्रबुद्ध मानव चिन्तन के लिये बाध्य हुआ होगा। इन्हीं समस्याओं के समाधानस्वरूप चिन्तन–मनन के परिणामस्वरूप दर्शन शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ होगा।

वैदिक विचारकों को इस बात का विश्वास था कि एक यथार्थ सत्ता अवश्य है जिसकी अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि भिन्न–भिन्न संज्ञाएँ या आकृतियाँ हैं। वह एकाकी यथार्थ सत्ता ही समस्त स्थावर जंगम का शासक है। यथार्थ सत्ता एक ही है, विद्वान् उसे नाना प्रकार के नामों से पुकारते हैं यथा– अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।[2]

मानव मन में जड–चेतन के सृष्टा के सम्बन्ध में उद्भूत विविध प्रश्नों पर विद्वान् मनीषियों ने अपनी–अपनी मेधा के अनुसार अनेक मत व्यक्त किये हैं। इसके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में अनेक दर्शनों का आविर्भाव हुआ।इन्हीं चिन्तन शैलियों को कालान्तर में भारतीय दर्शन के नाम से अभिहित किया गया।इस प्रकार दर्शनरूपी ज्ञान की इस स्रोतस्विनी का प्रवाह आदि काल से अबाध गति से प्रवाहित होता चला आ रहा है, जिसका उद्गम स्थल हमें वैदिक ज्ञान के अक्षय भण्डार ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त, पुरुष सूक्त आदि तत्कालीन मानव की नैसर्गिक जिज्ञासा के परिचायक हैं।

वेद प्रामाण्य या ईश्वर की सत्ता में विश्वास के आधार पर भारत में आस्तिक– नास्तिक दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ। नास्तिक दर्शन में अग्रगण्य चार्वाक दर्शन एक भौतिकवादी दर्शन है। यह पारलौकिक सत्ता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। चार्वाक केवल चार तत्वों को मानता है–पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु । समस्त जीव–निर्जीव तन्त्र इन्हीं के संयोग से बने हुए हैं। वेदबाह्य इस दर्शन में कहा गया है–

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्यास्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

बौद्ध दर्शन में दार्शनिक तत्वों – आत्मा, ईश्वर तथा जगत के विषय में उठाये गये प्रश्नों को 'अव्याकृत प्रश्नानि' कहा गया तथा 'चार आर्य सत्य' का सिद्धान्त व्यक्त किया गया। जैन दर्शन भी ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता है तथा स्याद्वाद का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। सांख्य दर्शन भी ईश्वरवादी नहीं है, किन्तु वेद के प्रामाण्य को मानने के कारण इसे आस्तिक दर्शनों की श्रेणी में रखा जाता है। सांख्य दर्शन मुख्यतः दो तत्वों को स्वीकार करता है– प्रकृति और पुरुष। इन्हीं तत्वों के संयोग से सृष्टि का निर्माण होता है।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।[3]

महर्षि पतंजलि का योग दर्शन भी यद्यपि ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता है तथापि वेद के प्रामाण्य को मानने के कारण आस्तिक दर्शन में गिना जाता है। योग दर्शन में कहा गया है कि क्लेश, कर्म, विपाक और आशय अर्थात् वासनाओं के परामर्श से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः। [4]

न्याय दर्शन का प्रतिपाद्य विषय प्रमाणमीमांसा है। न्यायसूत्रकार महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में ईश्वर का नाम मात्र का उल्लेख किया है। बाद के आचार्यों ने युक्तियों के आधार पर ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है।महर्षि कणाद द्वारा प्रवर्तित वैशेषिक या औलूक्य दर्शन भी 'सत्' या ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। उसके अनुसार ईश्वर इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण है।

पूर्व मीमांसा दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वैदिक कर्मकाण्ड है। वेदों पर आधारित होने के कारण पूर्व मीमांसा एक ईश्वर की सत्ता के बजाय अनेक देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार करता है। लौगाक्षिभाष्कर जैसे बाद के मीमांसकों ने ईश्वर की सत्ता मानी है।

ईश्वरार्पणबुद्धया कियमाणस्तु निश्रेयसहेतुः।[5]

उत्तरमीमांसा अर्थात् वेदान्त वेदों के ज्ञान काण्ड पर आधारित है और इसे ब्रह्म मीमांसा भी कहते हैं। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ही परम तत्व है, वह ही एक मात्र सत्ता है। वह ही जगत् का सार है। वह जगत् की आत्मा है। ब्रह्म को विश्व का कारण माना गया है। विश्व की उत्पत्ति इसी से होती है और अन्त में इसी में लय हो जाता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि इस सृष्टि में जो कुछ भी जड़–चेतन पदार्थ हैं, वह सब ईश्वर द्वारा आच्छादित है।

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। 6

छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि यह सम्पूर्ण जगत निश्चय ही ब्रह्म स्वरूप है, यह उसी से उत्पन्न होता है, इसका उसी में लय होता है तथा उसी से संचालित होता है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तज्जलानीति उपासीत्। [7]

केनोपनिषद्, मुण्कोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद् एवं तैत्तिरीयोपनिषद् में भी ब्रह्म को ही परम सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय दर्शन में भगवान्, ईश्वर, परब्रह्म आदि नामों से वर्णित "सत्" को व्याकरण दर्शन में शब्द–ब्रह्म से अभिहित किया गया है। व्याकरणागम शब्द तत्व को ही ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म विषयक जो–जो अवधारणाएँ औपनिषद् वेदान्तियों द्वारा प्रस्तुत की गयीं हैं, वे सभी शब्द तत्व में भी पायी जाती हैं। शब्द तत्व के विषय में न कोई द्वैत है, न अद्वैत है और न विशिष्टा द्वैत है। इस अविनाशी शब्दब्रह्म की सावत्रिक सत्ता एवं उसकी विविधरूपता के प्रतिपादनार्थ वैयाकरणों ने अनेक विध प्रक्रियाओं तथा कल्पनाओं को जन्म दिया। प्रकृति–प्रत्ययों की विशाल श्रंखला चतुर्विध पदविभाग इत्यादि इन्हीं कल्पनाओं के परिणाम हैं। शब्द को अखण्ड, अविच्छेद्य एवं नित्य मानने वाले वैयाकरण आचार्यों द्वारा के शब्दों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग, रूढ शब्दों में भी प्रकृति–प्रत्यय आदि की कल्पना का एक मात्र लक्ष्य था– इन सभी असत्य विभागों तथा तत्सम्बद्ध असत्य कल्पनाओं द्वारा उसी एक, अविभक्त एवं सत्य स्वरूप महान शब्द देव के साथ सानिध्य प्राप्त करना।

महान् देवः शब्दः।
महता देवेन नः साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्। [8]

यद्यपि संस्कृत व्याकरण में नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि के रूप में दार्शनिक चिन्तन की परम्परा बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी, तथापि सुव्यवस्थित क्रम में पाणिनि, कात्यायन तथा पतंजलि के समय से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ हुआ। पद– प्रमाणज्ञ भर्तहरि के ग्रन्थ वाक्यपदीय ने संस्कृत व्याकरण को दर्शन की उदात्त भूमिका में प्रतिष्ठापित किया और उसके असाधारण स्वरूप एवं महिमा को अनावृत करते हुए शब्द सामान्य को शब्दब्रह्म की अनन्य संज्ञा से अभिहित किया। भर्तहरि ने अपने ग्रन्थ में शब्दब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि शब्द तत्व उत्पत्ति विनाश रहित है। सभी विकल्पों से परे है तथा देश और काल के परिच्छेद से मुक्त है। अकारादि वर्णों का निमित्त होने के कारण अक्षर कहा जाता है। उसी शब्दब्रह्म से जगत

व्यवहार घट– पट आदि अर्थ रूप में भासित होता है।यह सम्पूर्ण प्रपंच शब्दब्रह्म का विवर्त है।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रकिया जगतो यतः।। [9]

संसार का सम्पूर्ण व्यवहार शब्द मूलक है। जगत् में ऐसा कोई ज्ञान, जानकारी या संवेदना नहीं है जो शब्दों के बिना हो जाता हो। ज्ञान तो शब्दों से इस प्रकार बिंधा हुआ है जैसे धागे से मणियाँ। ज्ञान की प्रतीति शब्दानुविद्ध होकर ही होती है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते।। [10]

अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों– 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन', 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' आदि के द्वारा जो शब्द ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद शून्य पुनः–पुनः एक ही बताया गया है, वही शब्दब्रह्म भिन्न– भिन्न शक्तियों के आश्रय से स्वतः अभिन्न होते हुए भी पृथक् सा प्रतीत होता है जैसे आवर्त बुदबुद एवं तरंग आदि जल विकार भिन्न होते हुए भी जल ही हैं जलातिरिक्त कुछ नहीं।उसी भेद शून्य शब्दब्रह्म की काल शक्ति या स्वातन्त्र्य या अविद्या शक्ति का आश्रय लेकर जन्मादि छः विकार पदार्थ भेद के कारण होते हैं–

एकमेव यदाम्नातं भिन्नशक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथकत्वेनेव वर्तते।।
अध्याहितकलां यस्यकालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षट् भावभेदस्य योनयः।। [11]

कारण–कार्यात्मक शक्तियों के बीजभूत अद्वितीय शब्दब्रह्म की भोक्ता, भोक्तव्य और भोग रूप में अनेक प्रकार की स्थिति या लोक व्यवहार दृष्टिगत होता है। अर्थात् वह एक होते हुए भी सभी पदार्थों का मूल कारण है। यथा– वृक्ष के सभी भागों का कारण उसका बीज होता है।

एकस्य सर्वबीजस्य यस्य चेयमनेकधा।
भोक्तृ भोक्तव्य रूपेण भोगरूपेण च स्थितिः।। [12]

अध्ययन का उद्देश्य

प्राचीन भारतीय महर्षियों, विद्वानों अथवा तत्व वेत्ताओं के द्वारा ईश्वर, परमात्मा, परम सता तथा ब्रह्म के विषय में व्यक्त किये गये विभिन्न मत–मतान्तरों के सम्बन्ध में व्याकरण दर्शन में निहित शब्दब्रह्म की सत्ता को प्रतिष्ठापित करना।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सत्य वास्तव में 'एक' है। उसी एक, अद्वितीय, अनन्य, अप्रतिम सत्ता से यह सम्पूर्ण जड– चेतन सृष्टि उद्भूत होती है तथा उसी में इसका लय हो जाता है। यह अपनी इच्छा से अपनी शक्तियों के आश्रय से नानारूपात्मक सृष्टि के रूप में भासित होता है। सम्पूर्ण दृष्यमान चराचर जगत उसी का विवर्त है। इस एक 'सत्' को बुद्धिजीवियों ने अपने –अपने विवेकानुसार ब्रह्म, पर ब्रह्म, ईश्वर, प्रणव, तथा ओम् आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया है। व्याकरण दर्शन में इसी सत् को 'शब्दब्रह्म' नाम दिया गया है।

अंत टिप्पणी

1. *करणाधिकरणयोश्च 3/3/117*
2. *ऋग्वेद 1/164/46*
3. *सांख्यकारिका 21*
4. *पातंजलयोगसूत्र 1/24*
5. *अर्थसंग्रह–व्याख्याकार श्री कामेश्वरनाथ मिश्र पृष्ठ 95*
6. *ईशावास्योपनिषद् 1*
7. *छान्दोग्योपनिषद् 3/14/1*
8. *महाभाष्य पस्पशाहनिक।*
9. *वाक्यपदीय 1/1*
10. *वाक्यपदीय 1/123*
11. *वाक्यपदीय 1/2–3*
12. *वाक्यपदीय 1/4*